

फ़िलहाल के लिए, सभ्यताओं के बीच वार्ता: सत्रहवाँ न्यूज़लेटर (2026)



युद्ध, अब्दुल हामिद बालबाकी (लेबनान), 1977.

प्यारे दोस्तो,

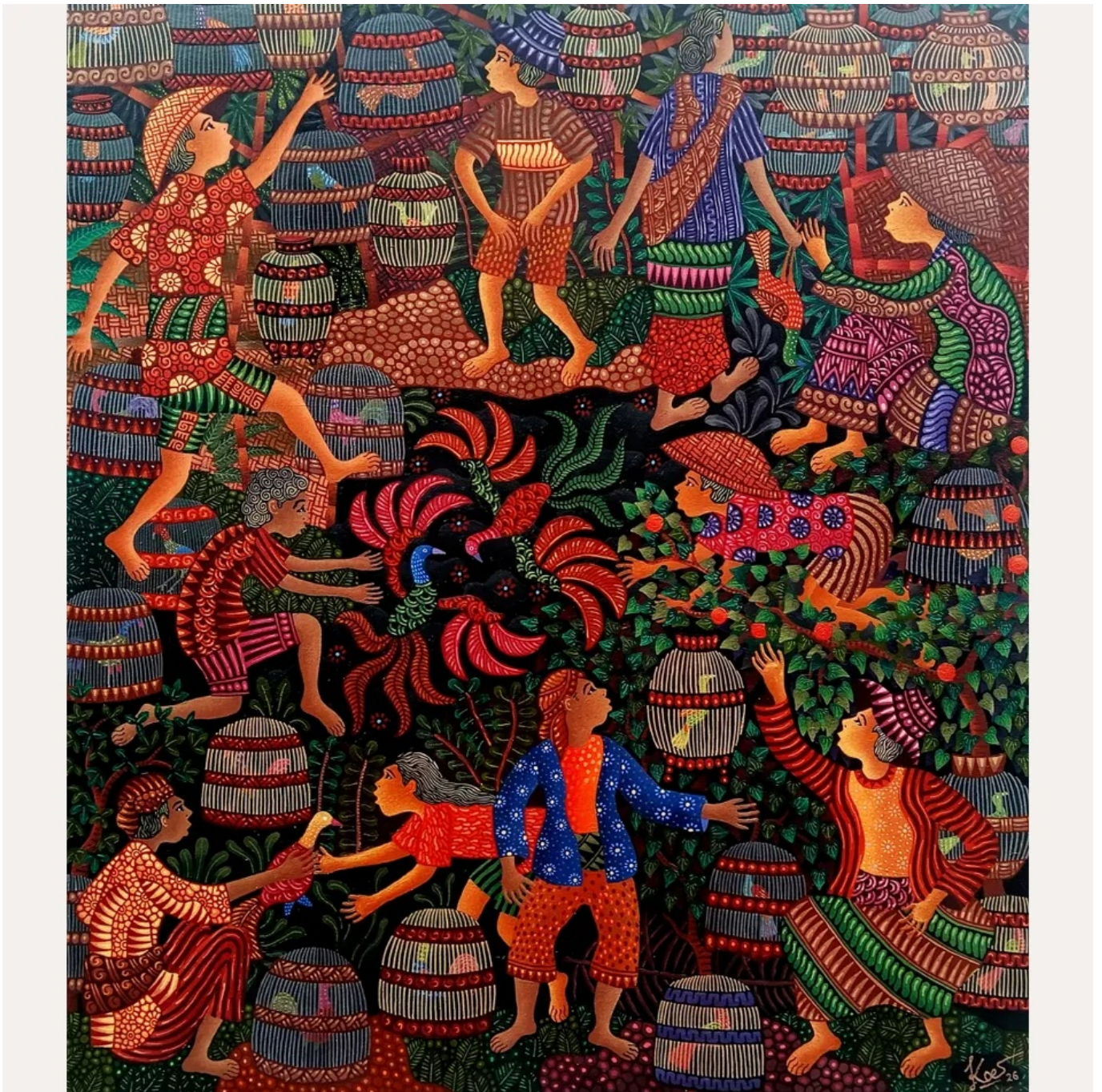
ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

ईरान के खिलाफ़ यूएस-इज़राइल के अवैधानिक युद्ध के कुछ सबसे बुरे दिनों में मैं अपने कुछ दोस्तों से बात कर रहा था जो उन रिहायशी इलाकों में थे जहाँ बमबारी जारी थी। उनमें से कुछ विचारक हैं, कुछ कवि और कलाकार, कुछ सरकारी मुलाज़िम तो कुछ अलग-अलग संस्थानों से जुड़े हुए। सरकार के प्रति अपने नज़रिए के बावजूद वे सभी दृढ़ता से अपने देश के लिए खड़े हुए। एक भी व्यक्ति को ऐसा नहीं लगा कि उनकी दुनिया किसी खतरे में है। उनकी दृढ़ता, उनकी हिम्मत ईरानी सभ्यता के साहस पर टिकी है।

मार्क्सवाद और राष्ट्र मुक्ति आंदोलनों का 'सभ्यता' के सिद्धांत के साथ एक जटिल रिश्ता रहा है। पारंपरिक मार्क्सवाद इसे इसलिए नकार देता है क्योंकि यह सामाजिक विभाजन को सांस्कृतिक वर्चस्व कहकर छिपा सकता है जिससे वर्ग संघर्ष की ज़रूरत खत्म हो जाती है। लेकिन फ़्रांसीसीवाद विरोधी वैश्विक युद्ध के बाद के दौर में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों

के बीच मार्क्सवाद एक अहम सिद्धांत बन गया, और तब सभ्यता का विचार एक नए रूप में लौटा। साम्राज्यवाद के खिलाफ सांस्कृतिक लड़ाई में सभ्यता एक मूल्यवान क्षेत्र बनकर उभरी। यह वर्गीय वर्चस्व का विचारधरात्मक मुखौटा बनने की बजाय राष्ट्रीय निरंतरता और राजनीतिक वैधता का एक उपकरण बन गई। इसके बावजूद सभ्यता के विचार की इस पुनर्व्याख्या को मुक्ति के विचारबिंदु से समझना ज़रूरी था ताकि सभ्यता के विचार में निहित प्रतिक्रियावादी विरासत से आज़ाद हुआ जा सके।

उदाहरण के लिए, माओ त्से तुंग ने जिस चीनी मार्क्सवाद को आकार दिया, उसका ज़ोर इस बात पर रहा कि क्रांति से पहले की खराब विरासतों, जैसे कंप्यूशियस की सामाजिक ऊँच-नीच और लैंगिक भेदभाव, को छोड़ दिया जाना चाहिए, साथ ही इसके वर्ग संघर्ष और वैचारिक परिवर्तन के ज़रिए 'चीनी सभ्यता' के विचार को साम्राज्यवाद के खिलाफ एक बाधा और देशभक्ति के विकास के लिए अपनाया।



पक्षियों का बाज़ार, कुसबुदियांतो (इंडोनेशिया), 2026.

ईरानी क्रांति (1978-1979) में, मार्क्सवाद सहित कई ताकतें शामिल थीं, इनमें से कइयों को नए बने इस्लामिक गणराज्य ने दंडित किया या मार डाला। दमन के बावजूद, कई मार्क्सवादी विचार इस्लामिक गणराज्य के वैचारिक ढाँचे में प्रवेश कर गए, चाहे वह विभिन्न विचारकों के काम के माध्यम से हो, जिनका मार्क्सवाद के साथ अपना इतिहास था, जैसे एहसान तबरी (1917-1989), जलाल अल-ए-अहमद (1923-1969), अली शरियती (1933-1977), बीजान जज़ानी (1938-1975), या खोसरो गोलसोरखी (1944-1974)। काश मैं इन विचारकों के बारे में और अधिक लिख पाता, लेकिन इसके लिए एक पूरी किताब चाहिए। सबसे प्रभावशाली गोलसोरखी थे, जो अपनी जवानी में ही मारे गए। उन्होंने अपने मुक़दमे के दौरान एक घबराए हुए न्यायाधीश से कहा :

मैं अपनी बात, मध्यपूर्व के लोगों के लिए शहीद होने वाले महान मौला [इमाम] हुसैन के शब्दों से शुरू करता हूँ, मैं, एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी, ने सबसे पहले इस्लाम के विचारों के बीच सामाजिक न्याय की तलाश की और वहाँ से मैं समाजवाद तक पहुँचा। मैं इस अदालत में अपनी ज़िंदगी का सौदा नहीं करूँगा, और न ही ज़िंदा रखे जाने की विनती करूँगा। ईरान के लिए लड़ रहे अनगिनत लोगों के संघर्षों और अभावों में मैं एक बूँद मात्र हूँ।...हाँ, मैं अपनी ज़िंदगी के लिए सौदेबाज़ी नहीं करूँगा, क्योंकि मैं संघर्षरत और हिम्मती लोगों की संतान हूँ। मैंने अपनी बात इस्लाम से शुरू की। ईरान में सच्चे इस्लाम ने हमेशा ईरान की आज़ादी के आंदोलन के प्रति अपना कर्ज़ चुकाया है। सैय्यद अब्दुल्ला बहबहानी, शेख मोहम्मद खियाबनिस जैसे लोग उन आंदोलनों का सच्चा स्वरूप हैं। और आज भी सच्चा इस्लाम ईरान के राष्ट्रमुक्ति आंदोलन को अपना कर्ज़ चुका रहा है। मार्क्स ने कहा था कि 'एक वर्गीय समाज में, पूँजी का संचय एक ओर होता है तथा गरीबी, भूख और पीड़ा का दूसरी ओर, जहाँ संपदा का उत्पादन करने वाले खुद मुफ़लिसी में रहने को मजबूर होते हैं', और मौला [इमाम] अली का कहना है कि 'हज़ारों को ग़ुरबत में धकेले बिना कोई महल खड़ा नहीं हो सकता', इन दोनों बातों में बहुत समानता है। इसलिए मौला [इमाम] अली को कोई भी इतिहास का पहला समाजवादी कह सकता है, और ऐसे ही सलमान फ़ारसी और अबू दर ग़फ़़ार को भी।

क्रांति के समय तक ईरानी वामपंथ – जो फ़िदायीन गुरिल्लाओं, साम्यवादी तुदेह पार्टी, और इस्लामवादी-क्रांतिकारी मुजाहिदीन के बीच विभाजित था – यह समझ चुका था कि वह धार्मिक ताकतों के बिना शाह को उखाड़ नहीं सकते। लेकिन उन्होंने ईरानी समाज पर, जिसमें मजदूर वर्ग भी शामिल है, धार्मिक गुरुओं की शक्ति को कम करके आँका। यही ग़लत अनुमान था जिसने एक वर्ष के भीतर ईरानी क्रांति को इस्लामी गणराज्य में बदल दिया। फिर भी, एक साधारण धर्मतंत्र बनाने के बजाय, क्रांति के बाद के ईरान ने एक बहुत पुरानी सभ्यतागत विरासत से प्रेरणा ली, जो साइरस महान (559-530 ईसा पूर्व) और हख़ामनी साम्राज्य (लगभग 550-330 ईसा पूर्व) के शासनकाल से चली आ रही है – सफ़वी साम्राज्य (1501-1736) के दौरान ईरान में राज्य धर्म के रूप में शियावाद के आगमन से लगभग दो हज़ार वर्ष पहले। यह वह पुरानी सभ्यतागत विरासत है जो ईरानी समाज में एक आधारभूत भूमिका निभाती है, जो इसे आंतरिक मतभेदों को अवशोषित करने और भयानक संकट के समय में संप्रभुता की रक्षा के आधार के रूप में एक गहरी ऐतिहासिक वैधता का आह्वान करने में सक्षम बनाती है। 1971 में, शाह ने साइरस महान के बाद से 2,500 वर्षों से निरंतर चली आ रही सभ्यता का ज़ंशन मनाने के लिए पर्सेपोलिस में एक विशाल कार्यक्रम आयोजित किया। बाद में, 1980 से 1988 तक ईरान के खिलाफ़ इराक के युद्ध के दौरान, जब सद्दाम हुसैन ने इस संघर्ष को अरबों के खिलाफ़ फ़ारसियों के युद्ध के रूप में चित्रित करने की कोशिश की, तो इस्लामी गणराज्य ने उस ढाँचे को अस्वीकार कर दिया और इसके बजाय इस बात पर जोर दिया कि यह जंग 'मातृभूमि की रक्षा' (دفاع از وطن, देफ़ा-ए-वतन) थी, एक ऐसी ज़मीन का विचार जो अजेय थी और किसी का उपनिवेश नहीं थी और इस भूमि के लोगों को हर क़ीमत पर इसकी रक्षा करनी ही होगी।



मक़बरे का दीदार, इब्राहिम एल-सलाही (सूडान), 1965.

उपनिवेश बनाए गए समाजों से ताल्लुक न रखने वाले लोगों के लिए 'मातृभूमि की रक्षा' और सभ्यतागत विरासत जैसे शब्दों के सही मायने समझ पाना मुश्किल होगा। उपनिवेशवाद ने तमाम सामाजिक संरचनाओं का भारी नुकसान किया है। उपनिवेशवाद संपदा चुराकर उसे दूसरी जगह के लोगों के विकास में इस्तेमाल करता है; यह उपनिवेश बनाए गए लोगों की संस्कृति को अपमानित करता है और अमूमन उन्हें उनकी भाषा तथा उनके अपने ऐतिहासिक मिशन की भावना से वंचित करता है। इसीलिए वैश्विक दक्षिण में इतने लोग यह देखकर चकित हैं कि ईरान संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) के सामने टिका हुआ है और रणनीतिक रूप से मौजूदा संघर्ष में जीत रहा है।

जो लोग बर्बादी के उस इतिहास से जुड़े हैं, उनके लिए चीन या ईरान जैसे समाजों द्वारा प्रदर्शित इस तरह की गरिमा को

देखना प्रेरणदायक है, जहाँ भ्रमों (काल्पनिक अतीतों के निर्माण के माध्यम से) या दूसरों (चाहे अल्पसंख्यक हों या विदेशी) को बदनाम करके सांस्कृतिक गर्व गढ़ने की कम आवश्यकता होती है। ये ऐसी जगहें हैं जहाँ उपनिवेशवाद संस्कृति को पूरी तरह नष्ट नहीं कर पाया इसलिए उनके अपने इतिहास को पुनः प्राप्त करने और पुनर्निर्मित करने की गुंजाइश बनी रही, पूरी तरह से पश्चिम के झूठे प्रतिफलन (जो अक्सर अस्वीकृति और नकल दोनों के बराबर होता है) में फँसे बिना। यह उस तरह का आत्मविश्वास है जो संयुक्त राज्य अमेरिका की विनाशकारी शक्ति का गरिमा के साथ सामना करता है और ट्रंप और उनके सहयोगियों को लेगो मीम्स (ईरान द्वारा लेगो का इस्तेमाल कर यूएस का मज़ाक बनाना) भेजने का साहस रखता है जो खोखले उपहास नहीं बल्कि वास्तविक निंदा हैं।



सरहद के पार, एंग ह्वी चू (मलेशिया), 2014.

दिसंबर 1997 में, इस्लामिक सम्मेलन संगठन (ओआईसी) ने तेहरान घोषणा जारी की, जिसने 'सभ्यताओं के संवाद' के विचार को आगे बढ़ाया। यह सैमुअल हंटिंगटन के 1993 के निबंध और 1996 की पुस्तक 'द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन्स एंड द रीमेकिंग ऑफ वर्ल्ड ऑर्डर' (सभ्यताओं का टकराव और विश्व व्यवस्था का पुनर्निर्माण) की सीधी प्रतिक्रिया था। फॉरेन अफेयर्स में प्रकाशित उस प्रारंभिक लेख में, हंटिंगटन ने भविष्यवाणी की थी कि 'सभ्यताओं के बीच संघर्ष आधुनिक दुनिया में संघर्ष के विकास का नवीनतम चरण होगा'। हंटिंगटन के लिए, इतिहास विचारधाराओं (साम्यवाद बनाम पूंजीवाद) के टकराव से सभ्यताओं (जिसे उन्होंने धार्मिक-सांस्कृतिक शब्दों में 'पश्चिमी, कन्फ्यूशियस, जापानी, इस्लामिक, हिंदू, स्लाविक-ऑर्थोडॉक्स, लैटिन अमेरिकी, और संभवतः अफ्रीकी सभ्यता' के रूप में परिभाषित किया) के टकराव की ओर बढ़ गया था। हंटिंगटन ने चेतावनी दी कि नए टकराव इन्हीं के इर्द-गिर्द खड़े होंगे। ओआईसी ने आगाह किया कि दुनिया को देखने का यह तरीका वास्तव में उसी संघर्ष को जन्म दे सकता है जिसका वर्णन यह करने का दावा करता है, न कि उसे रोक सकता है, और सभ्यताओं के बीच संघर्ष की प्रतीक्षा करने के बजाय उनके बीच संवाद करना बेहतर होगा।

तेहरान घोषणा को संयुक्त राष्ट्र (यूएन) के भीतर तो समर्थन मिला, लेकिन पश्चिमी राजधानियों के गलियारों में नहीं, जहाँ 2001 से पहले से मौजूद 'आतंक के खिलाफ युद्ध' (वॉर ऑन टेरर) की बयानबाजी नियंत्रण से बाहर हो गई। इस्लाम का डर आम बात बन गया, और यह जल्दी ही प्रवासियों के डर से जुड़ गया, एक दोहरा डर जो यूरोप और अमेरिका को लगातार पंगु बना रहा है। 1998 में, यूएन ने 2001 को 'सभ्यताओं के बीच संवाद का वर्ष' घोषित किया, और 15 अक्टूबर से 3 नवंबर 2001 तक पेरिस में आयोजित यूएन शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) के 31वें आम सम्मेलन में, उसने ईरानी दार्शनिक और राजनयिक अहमद जलाली को अपना अध्यक्ष चुना और ईरान के राष्ट्रपति सैय्यद मोहम्मद खातमी को संगठन को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया। यह सम्मेलन सितंबर में अमेरिका पर हुए हमलों के एक महीने से थोड़ा अधिक समय बाद और अफ़ग़ानिस्तान पर अमेरिकी आक्रमण के दौरान हुआ, जो उसके 'वैश्विक आतंक के खिलाफ युद्ध' (ग्लोबल वॉर ऑन टेरर) का हिस्सा था। खातमी का भाषण आज भी उतना ही दमदार है, जिसमें उन्होंने दुनिया से 'झूठे राजनीतिक ध्रुवीकरण और विभाजन' के आगे न झुकने का आग्रह किया गया था। आतंकवाद 'अंधी कट्टरता और क्रूर बल के बीच घिनौने गठबंधन का परिणाम है, जिसका उद्देश्य एक भ्रम फैलाना है, जो अपने सभी प्रचार के बावजूद, अचेतन के खतरनाक विचारों का प्रक्षेपण मात्र है।'



माँ और बच्चा, जेराड सेकोटो (दक्षिण अफ्रीका), 1943-1945.

खातमी ने कहा कि जब कोई आतंकी हमला होता है तो सबसे खतरनाक है उसका बदला लेना। 'बदला लेना खारे पानी की

तरह है, जो दिखता तो पानी ही है, लेकिन प्यास बुझाने की जगह यह प्यास बढ़ाता है, इसलिए इससे दुनिया हिंसा, नफ़रत और बदले के एक अंतहीन चक्र में फँस जाती है। खातमी ने जोर देते हुए कहा कि बदले की जगह बातचीत 'अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए सबसे ज़रूरी है'।

बातचीत बेहद ज़रूरी है क्योंकि इसका विकल्प तो हमें विनाश की ओर धकेल रहा है – ऐसा दो तरह से हो रहा है पूँजीवादी व्यवस्था असमानता बढ़ा रही है और धरती को बर्बाद कर रही है और साम्राज्यवादी व्यवस्था युद्ध के ज़रिए इंसानी समाजों को। लेकिन न तो सभ्यता और न ही बातचीत अपने आप इतिहास को मानव मुक्ति की ओर ले जा सकते हैं। उसके लिए समय के साथ-साथ वर्ग संघर्ष को तीव्र होना होगा, इंसानी ज़रूरतों को भौतिक असमानताओं और शक्ति संबंधों से ऊपर उठना होगा, तथा वैश्विक व्यवस्था को अपने आप को ऐसे रूप में ढालना होगा जो हमारी पेचीदा नियतियों को साकार कर सके न कि हमें एक दूसरे के बरक्स खड़ा कर दे।



शुद्धीकरण, होज़े क्लेमेंते ओरोज़को (मेक्सिको), 1934-1935.

कार्लोस गुतिरेज़ कूज़ (1897–1930) ने मेक्सिको की क्रांति के बाद की साहित्यिक धाराओं के बीच अपनी काव्य संवेदनशीलता विकसित की, जिसमें देशभक्त समूह 'कंटेम्पोरेनीओस' (समकालीन) भी शामिल था, लेकिन बाद में अधिक कट्टरपंथी बनने के कारण उनसे अलग हो गए। 1923 में, उन्होंने 'कोमो पिएन्सा ला प्लेबे, फोयेटो दे प्रोपागांडा लिबटारिया एन हाइकैस' (आम लोग कैसे सोचते हैं: हाइकाई में मुक्ति प्रचार की एक पुस्तिका) प्रकाशित की, जिसने मेक्सिको में होज़े हुआन ताब्लादा (1871–1945) से जुड़े हाइकै रूप को साम्यवादी कविता का माध्यम बना दिया। गुतिरेज़ कूज़ समझ गए थे कि यदि श्रमिक जनसमूह को राष्ट्र से कुछ नहीं मिलता है, तो उसकी रक्षा करने का कोई अर्थ नहीं है। यह बात यहाँ दोहराना उचित है : किसी सभ्यता का अमूर्त रूप में बचाव नहीं किया जा सकता है। यदि इसका कोई अर्थ है, तो उसे उन लोगों के जीवंत रिकॉर्ड के रूप में बचाया जाना चाहिए जो इतिहास बनाते हैं। जैसा कि उन्होंने अपने एक हाइकाई में कहा :

*Labriego, la tierra da ciento por uno
y tú ganas uno por ciento.*

हे किसान, ज़मीन एक से सौ उपजाती है
और तुम सौ से एक कमाते हो।

स्नेह सहित,

विजय